International Referred Research Journal, October,2010. ISSN- 0974-2832VoL.II *ISSUE-21

शोध पत्र- राजनीति विज्ञान

गांधी एवं मार्क्स का समाजवादी चिंतन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सापेक्षिक महत्व

* डॉ. अमिता वर्मा

October, 2010

* व्याख्याता राजनीति विज्ञान, राजकीय महाविद्यालय कालाडेरा, जयपुर

सत्य एवं अहिंसा गांधी के समस्त चिन्तन का मूलाधार है। गांधी के समाजवादी चिंतन में भी अहिंसा केन्द्रीय तत्व है। गांधी पूंजीवाद की बुराइयों के प्रति सचेत थे तथा उनका उन्मूलन करना चाहते थे किन्तु वे पूंजीवाद से संघर्ष के लिए हिंसा या वर्गद्वेश को उचित और प्रभावशाली साधन नहीं मानते थे। एक वर्गहीन, आर्थिक समानता पर आधारित समाज के निर्माण के लिए गांधी अहिंसा और वर्ग सहयोग के मार्ग को अपनाने पर बल देते हैं वे वस्तुतः यह स्वीकार करते हैं कि यदि श्रमिक पूंजीपति वर्ग के शोषणकारी उद्देश्यों में सहयोग नहीं करें तो पूंजी द्वारा श्रमिक का शोषण हो ही नहीं सकता उनका मत है कि श्रमिक अपने महत्व को पहचान लें तो पूंजीपतियों के लिए उनके हितों की उपेक्षा करना असंभव हो जायेगा। गांधी की दृष्टि में कम्युनिज्म का अर्थ है ''एक वर्गहीन समाज–एक ऐसा आदर्श जिसके लिये प्रयत्न करना ही चाहिये। मेरा रास्ता ही अलग होता है जब इस आदर्श की पूर्ति के लिये बल प्रयोग की सहायता ली जाती है, हम सब समान पैदा हुये हैं। किन्तु पिछली तमाम शताब्दियों से हम ईश्वर की इच्छा का प्रतिरोध करते आ रहे हैं। मैं संगीन की नोक के बूते पर बुराई को टालने में यकीन नहीं करता।[1]

गांधी श्रम और पूंजी में कोई नैसर्गिक विरोध नहीं मानते। दोनों एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करते हैं। पूंजीपतियों को केवल श्रमिकों की भौतिक आवश्यकता का ही ध्यान नहीं रखना है अपितु उनका नैतिक कल्याण भी करना है। उनकी लड़ाई पूंजी से नहीं पूंजीवाद से है। गांधी के लिए एक अमीर है और दूसरा गरीब है तो कोई खास चिन्ता नहीं लेकिन अमीर–गरीब का शोषण करें तो स्थिति विस्फोटक बन जाती है इसीलिये उन्होंने संघर्ष का अंत कर पूंजी एवं श्रम में मैत्रीपूर्ण संबंध विकसित करने पर जोर दिया।[2] गांधी के अनुसार पूंजीवाद की बुराईयों के प्रतिकार का सबसे प्रभावी उपाय है श्रम शक्ति की प्रभावशीलता में निर्णायक वृद्धि, ताकि पूंजी निस्तेज हो जाय और उसमें शोषण करने की सामर्थ्य ही न रहे। संघर्ष की इस पद्धति में पूंजीपतियों को नहीं अपितु पूंजीवाद तथा उसके शोषणकारी स्वरूप को समाप्त करना अभीष्ट होता है, उनका मत है जब तक पूंजीपति स्वयं को मजदूरों के हितों का संरक्षक बनाये रखते हैं, तब तक श्रम एवं पूंजी परस्पर पूरक बने रहते हैं। गांधी ने वर्ग संघर्ष को समाप्त करने का दावा किया है यदि जनता अहिसंक मार्ग का अनुसरण करने को तैयार हो। अहिंसा को जीवन का आधारभूत सिद्धान्त बना लेने पर वर्गसंघर्ष असंभव हो जाऐगा। यह कहना उचित नहीं कि यदि पूंजीपति श्रमिकों को हिंसा द्वारा दबा कर रखना चाहते हैं तो श्रमिकों को हिंसा द्वारा अपने अधिकारों को प्राप्त करने का अधिकार है। गांधी के अनुसार श्रमिकों को पूर्ण दृढ़ता के साथ ही नहीं कहना सीखना चाहिए। अश्रुगैस तथा गोलियों को सहन करते हुए भी उन्हें अपने 'नहीं' पर डटे रहना चाहिए न कि पत्थर का जवाब पत्थर से देने का प्रयास करना चाहिए। गांधी ने यह भलीभाँति स्पष्ट कर दिया कि वे वर्गसंघर्ष के अस्तित्व को नहीं नकारते। वे वस्तुतः उसके औचित्य को अस्वीकार करते हैं, क्योंकि वे दृढ़ता से अनुभव करते हैं कि उसे टाला जा सकता है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि वर्ग सहयोग के उनके विचार का यह अर्थ कदापि नहीं है कि वे पूंजीवादी शोषण का विरोध नहीं करते हैं। उनका मानना है कि शोषणकर्ताओं के आदेशों को मानने से मना कर दे तो शोषण पूरी तरह समाप्त हो जाएगा। गांधी ने लिखा ''मैंने हमेशा यह कहा है कि मेरा आदर्श तो यह है कि पूंजीपति और मजदूर एक दूसरे के पूरक और सहायक की तरह काम करें। उन्हें एक बड़े परिवार की तरह रहना चाहिये,जिसमें वे एकता और मेल भाव कायम करें। पूंजीपति न सिर्फ मजदूरों के भौतिक कल्याण, बल्कि नैतिक कल्याण की भी देख–रेख करें और पूंजीपति अपने नीचे काम करने वाले मजदूरों की भलाई के लिये न्यासधारी बन कर रहें।[3]

गांधी को प्रतीत होता था कि वर्ग युद्ध भारत की मूल आत्मा के विरूद्ध है। भारत तो सभी के लिये सामाजिक न्याय के मूलभूत अधिकार के आधार पर साम्यवाद का विकास कर सकता है। मेरे सपनों के राम राज्य में राजा और रंक को समान अधिकार प्राप्त है। मैं अपने प्रभाव का सारा जोर वर्ग युद्ध को रोकने के लिये इस्तेमाल करूँगा। मान लीजिये कि आपको अपनी जमीन–जायदाद से अन्यापूर्ण ढंग से वंचित करने की कोशिश की जाती है तो आप लोग मुझे अपनी ओर से लड़ता हुआ पायेंगे।[4] वे केवल वर्गसंघर्ष को भड़काने एवं बनाये रखने के विरूद्ध हैं। उन्हें विश्वास है कि वर्गसंघर्ष टाला जा सकता है। इसे भड़काने में जितनी भलाई नहीं है, उतनी इसे रोकने में है। धनी वर्ग तथा श्रमिकों के मध्य संघर्ष केवल नाम मात्र का है। श्रमिकों द्वारा एक जुट होकर कार्य करने के बाद उसका भी उतना ही प्रभाव होगा जितना कि धनीवर्ग का रहा है। वास्तविक संघर्ष बुद्धिमानी एवं निर्बुद्ध में है। ऐसे संघर्ष को बनाये रखना मूर्खता ही होगी। निबुर्द्धि को दूर करने का आवश्यकता है।मार्क्स ने श्रमिकों की मुक्ति हेतु वर्गयुद्ध की अनिवार्यता पर जोर दिया है किन्तु उसके बिल्कुल विपरीत गांधीजी हृदय परिवर्तन पर विश्वास करते थे –पूंजीपतियों

और जमीदारों दोनों के ह्रदय परिवर्तन पर उनका विश्वास था। उन्होंने हिंसा का परित्याग कर दिया था। उन्होंने वर्ग युद्ध की भर्त्सना की थी। वे कहते थे कि श्रमिक को अपने परिवर्तन की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं, यदि पूंजी शक्ति है तो श्रम भी शक्ति है। दोनों शक्तियाँ विध्वंसात्मक या रचनात्मक रूप से प्रमुख हो सकती है। दोनों एक – दूसरे पर अवलम्बित है। श्रमिक जैसे ही अपनी शक्ति का पहचान लेता है, वैसे ही पूंजीपति का गुलाम बने रहने के स्थान पर उनका सहभागी बन जाने की स्थिति में आ जाता हैं। महात्मा गांधी और कार्लमार्क्स दोनों को मौलिक विचारधारा का प्रवर्तक माना जा सकता है। कार्लमार्क्स ने समाजवाद के समर्थन में एक वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रस्तुत करने का दावा किया और पूंजीपतियों के विरूद्ध श्रमिक वर्ग की निर्णायक जीत के उद्देश्य से वर्ग संघर्ष पर आधारित एक पद्धति का प्रतिपादन किया। गांधीजी ने स्वयं किसी नई राजनीतिक विचारधारा के सूत्रपात का दावा भले ही नहीं किया हो, उन्होंने राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के लिए एक नवीन दृष्टिकोण से युक्त, सत्य और अहिंसा पर आधारित क्रांतिकारी पद्धति का आविष्कार किया।मार्क्स और गांधी दोनों का लक्ष्य एक वर्गहीन राज्यहीन समाज की स्थापना करना है, तथा दोनों ही पूंजीवादी व उदारवादी लोकतांत्रिक प्रणाली के घोर विरोधी है, अतः जहां एक और गांधी तथा मार्क्स में – आर्थिक समानता, व्यक्तिगत सम्पत्ति का विरोध, व्यक्ति के लिए मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति, व्यक्ति का पूर्ण विकास आदि साध्यों में समानता थी, वहीं दोनों के साधनों में भारी भिन्नता थी अर्थात् मार्क्स जहां समाजवादी मूल्यों के लिए समाजवादी औद्योगिकीकरण को पहली शर्त मानते हैं जबकि गांधी ने इसमें कभी विश्वास नहीं किया, जहां समाजवादी व्यक्ति की इच्छाओं में विश्वास करते हैं जबकि गांधी व्यक्ति की सरलता में विश्वास करते हैं, जहां मार्क्स मजदूर वर्ग में चेतना जाग्रत कर पूंजीवादी व्यवस्था को नष्ट करने के पक्षधर हैं जबकि गांधी, आम जनता में चेतना के विकास पर बल देते थे। मार्क्स आर्थिक और राजनीतिक केन्द्रीयकरण की बात करते हैं जबकि गांधी आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण करने की बात करते थे। वे न तो विकसित तकनीक के विरोधी थे और न ही औद्योगिकरण के।[5] गांधी के अनुसार व्यक्ति दर्शन का केन्द्रीय तत्व है, व्यक्ति साध्य है और राज्य की उत्पत्ति व्यक्ति के लिए हुई है न कि व्यक्ति की उत्पत्ति राज्य के लिए इसके विपरीत मार्क्स भी राज्य के विरूद्ध है लेकिन वह व्यक्ति के स्थान पर समुदाय की सर्वोपरिता स्थापित करता है और व्यक्ति को समुदाय के नियंत्रण में रखता है। गांधी व्यक्ति के आचरण पर उसकी जाग्रत अन्तरात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई भी बाहरी नियंत्रण अनैतिक मानते है। जबकि मार्क्स समष्टि के हितों को सर्वोपरि तो मानता ही है वे उन्हें सुनिश्चित करने के क्रम में व्यक्ति की नैतिक श्रेष्ठता जैसे विचारों को कोई महत्व नहीं देता अतः मार्क्स दर्शन ''नैतिक'' तत्व को महत्व न देकर संघर्ष, क्रांति को महत्व देता है, जबकि गांधी दर्शन उन तत्वों को महत्ता देता है जो आज की आवश्यकता है और न केवल आज की बल्कि भविष्य को उज्जवल बनाने के तत्व हैं।अहिंसा गांधी के दर्शन का केन्द्रीय विचार है उनके सारे विचार चाहे आर्थिक, राजनैतिक या आध्यात्मिक हो, अहिंसा पर आधारित हैं, जिसके अधीन रहकर व्यक्ति हिंसा को जीत सकता है। हिंसा से आदमी अहिंसा को जीत नहीं सका। उनका मानना है कि हम अहिंसा के माध्यम से एक आदर्श न्यायसम्मत व्यवस्था का निर्माण करते हैं। जबकि मार्क्स अहिंसा पर कतई विश्वास नहीं करता है जिसका कारण है वे मानव स्वभाव को कठोर मानते हैं मानव ह्रदय इतना कठोर है कि वह क्रांतिकारी दबाव के आगे नहीं झुकता जहां तक उस पर नैतिक चोट नहीं बल्कि भौतिक चोट नहीं पड़ती है तब तक यह समर्पण नहीं करता है क्योंकि अपने स्वार्थीपन के कारण वह अपना हित नहीं छोड़ता वह अपने हित के साथ दूसरों के हित को नहीं देखता है। मार्क्स उत्पादन की केन्द्रीयकृत प्रणाली और विकास मशीनों और तकनीक पर आधारित औद्योगिक व्यवस्था के पक्षधर है। इसके विपरीत गांधी यंत्रों के अनियंत्रित विकास और अंधाधुन्ध औद्योगिकरण को मानव सभ्यता के लिए संकटपूर्ण मानते हैं। आर्थिक व्यवस्था की उनकी संकल्पना विकेन्द्रित लघु और कुटीर उद्योगों पर आधारित हैं वे ऐसे उद्योगों के पक्ष में हैं जिनमें मशीनों का सीमित प्रयोग हो और यंत्र मानवीय श्रम को विस्थापित न करें। वे पूंजी पर आधारित उद्योगों के पक्ष में है। मार्क्स उत्पादन के केन्द्रीय प्रणाली का समर्थन करके उत्पादन एवं वितरण के नियमन में राज्य को निर्णायक भूमिका प्रदान करते हैं गांधी का आर्थिक प्रतिमान उत्पादन उपभोग व वितरण के स्थानीयकरण पर आधारित हैं।[6]

मार्क्स और गांधी दोनों ही राज्य का उन्मूलन चाहते हैं। गांधी के अनुसार व्यक्ति साध्य है और राज्य की उत्पत्ति व्यक्ति के लिए हुई है न कि व्यक्ति की उत्पत्ति राज्य के लिए हुई हैं। गांधी राज्य को सामाजिक उत्थान और जनकल्याण का एक साधान मात्र मानते हैं। वे दार्शनिक आधार पर राज्य की सत्ता का विरोध करते हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि राज्य व्यक्ति के नैतिक विकास में बाधक है, व्यक्ति का नैतिक विकास उसकी आंतरिक इच्छाओं पर निर्भर है। लेकिन राज्य का गठन शक्ति पर आधारित होने के कारण व्यक्ति बाह्य कार्यों को ही प्रभावित कर सकता है। गांधी का प्रस्ताव है कि जैसे–जैसे व्यक्ति अहिंसक होता जायेगा, राज्य का स्वरूप भी रूपान्तरित होता जाएगा, और अहिंसक, प्रजातंत्र विकेन्द्रीकृत ग्राम स्वराज्य के चरणों के माधयम से अन्ततः एक राज्यविहीन समाज अथवा जाग्रत अराजकता की स्थिति को प्राप्त किया जा सकेगा। जबकि मार्क्स के अनुसार राज्य एक वर्ग आधारित संगठन है, जिसका उद्देश्य उस वर्ग के हितों का पोषण करना है, जिसका उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण हो। मार्क्स की कल्पना है कि पूंजीवाद के विरूद्ध संघर्ष में श्रमिकों की निर्णायक विजय के पश्चात् सर्वहारावर्ग की तानाशाही स्थापित होगी और राज्य पूंजीवाद के तन्तुओं को जड़ से उखाड़ फैकने का उपकरण बनेगा। पूंजीपति वर्ग का अस्तित्व पूरी तरह समाप्त हो जाने पर समाज में विभिन्न वर्ग नहीं रहेंगे, अतः राज्य का भी औचित्य नहीं रहेगा, और वह समाप्त हो जाएगा।

मार्क्स धर्म को जनता के लिए अफीम मानता था जो जनता को भाग्यवादी बनाता हैं और उसे उन भौतिक परिस्थितयों के विरूद्ध संघर्ष करने से विरत करता है। मार्क्स वर्ण व्यवस्था को भारत के सामाजिक विकास में बाधा मानते थे वहीं गांधी वर्णाश्रम धर्म की रक्षा के लिये प्रतिबद्ध थे।[7] मार्क्स जहां धर्म को भाग्य से जोड़ता है। वहीं गांधी नैतिकता, से जोड़ते हैं नैतिकता भी बाहरी दिखावे की नहीं बल्कि अन्तर्रात्मा की, उनके अनुसार धर्म के माध्यम से राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक व्यवस्थाओं को आदर्श रूप दे सकते हैं। मार्क्स पतनशील संस्कृति को जन्म देने वाली अनैतिक पूंजीवादी दुनिया को ही बदल देना चाहते थे। वहीं गांधी पतनशील संस्कृति को नैतिक उत्थान से संवारना चाहते थे।[8] मार्क्स जहां हिंसापूर्ण क्रांति पर विश्वास करते थे वहां गांधी पारस्परिक सद्भाव नैतिकता सहयोग व सामंजस्य में ही सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक समस्याओं का हल खोजते हैं, यह अन्तर दोनों की मानव स्वभाव संबंधी धारणा में अन्तर्निहित असमानता में देखा जा सकता है। जहां मार्क्स यह मानते है कि जब तक शोषण करने वालों पर भौतिक दबाव नहीं पड़ता वे झुकते नहीं है जबकि गांधी की मान्यता है कि भौतिक दबाव से मानसिक दबाव ज्यादा असर करता है यही कारण है कि मार्क्स आर्थिक संदर्भ में अर्थात–शोषित संबंध में जहां एक वर्ग संघर्ष पर बल देता है वहीं गांधी वर्ग सहयोग पर बल देते है। मार्क्स सोद्देश्य वर्ग–संघर्ष के समर्थक थे क्योंकि यथार्थ में यह आशा नहीं की जा सकती कि किसी भी अर्थव्यवथा के मुख्य शक्तिशाली वर्ग बिना प्रतिरोध के अन्य व्यवस्था के पक्ष में अपनी शक्ति को त्याग देंगे।[9]कार्ल मार्क्स न केवल मानव के विविध पक्षों में एक आर्थिक क्षेत्र में ही केन्द्रीयकरण चाहता है बल्कि उसने सभी पक्षों में आर्थिक को केन्द्र मानकर केन्द्रीकरण पर जोर दिया है। मार्क्स उत्पादन की केन्द्रीय प्रणाली का समर्थन करके उत्पादन एवं वितरण के नियमन में राज्य को निर्णायक भूमिका प्रदान करते हैं। गांधी के अनुसार न केवल राजनीतिक क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण, जिसके लिए उन्होंने पंचायती राज पर विस्तृत विचार दिये, आवश्यक है अपितु आर्थिक क्षेत्र में भी विकेन्द्रीकरण आवश्यक है। यही कारण है कि आर्थिक व्यवस्था की उनकी संकल्पना ने विकेन्द्रीकरण में लघु और कुटीर उद्योगों पर जोर दिया। वे ऐसे उद्योगों के पक्ष में है, जिनमें मशीनों का सीमित उपयोग हो और यंत्र मानवीय श्रम को विस्थापित करें। गांधी का आर्थिक प्रतिमान, उपभोग व वितरण के स्थानीयकरण पर आधारित है, वे राज्य के हाथों में शक्ति का विकेन्द्रीकरण नहीं बल्कि न्यासधारित के बोध का विस्तार पंसद करते थे। वे मार्क्स के विस्तार से असहमत थे क्योंकि गांधी का दृढ़ विश्वास था कि यदि राज्य ने पूंजीवाद का दमन हिंसा से किया तो वह स्वयं हिंसा के नागपाश में जकड़ जायेगा और कभी भी अहिंसा का विकास करने में समर्थ नहीं होगा।

मार्क्स के लिए आर्थिक कारक ही सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक प्रणाली के स्वरूप का निर्धारण करते हैं। मार्क्स ऐतिहासिक दृष्टि से तो आर्थिक कारकों को ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। गांधी इस तथ्य को तो स्वीकार करते हैं कि वर्तमान में मनुष्य के जीवन में आर्थिक और भौतिक कारकों ने महत्व प्राप्त कर लिया है पर इस स्थिति को विडम्बनापूर्ण मानते हैं, और एक ऐसी आदर्श स्थिति की प्रस्तावना करते हैं जिसमें आर्थिक और भौतिक कारकों का महत्व कम हो जाए, और व्यक्ति जीवन के उच्चत्तर नैतिक प्रयोजनों के प्रति समिर्पित हो जाए। मार्क्स भौतिक साधनों के लोगों के मध्य समान वितरण द्वारा तनावों और संघर्षों की समाप्ति का सुझाव देते हैं गांधी व्यक्ति के भौतिकवादी दृष्टिकोण का निशेध करके व्यक्ति में अस्तेय, अपरिग्रह, अस्वाद आदि प्रवृत्तियों के विकास के द्वारा उसे भौतिकवादी स्वार्थपरक जीवन की पद्धति से मुक्त करके सादा जीवन के प्रति प्रेरित करते हैं, तथा समाज के सधर्म, असमानता और तनाव का स्थायी निराकरण करना चाहते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. हरिजन 13 मार्च, 1937 2. योजना 15 अक्टूबर, 1994 3. यंग इंडिया 20 अगस्त, 1925 4. 1934 में जमींदार प्रतिनिधि मंडल से मुलाकात में गांधी का वक्तव्य ''सोशलिज्म ऑफ माई कन्सेप्शन्स'' मोहनदास करम चंद गांधी, भारतीय विद्या भवन, प . 245–465. गांधी, हरिजन –22.6.1935 से उद्ध त '' आर्थिक और औद्योगिक जीवन'' संपादक हबी. बी. खैर, नवजीवन प्रकाशन अहमदाबाद, 1961 6. योजना 15 अक्टूबर, 1994 7. प्रो. आशा कौशिक गांधी नई सदी के लिये (संपादित), रावत पब्लिकेशन, जयपुर, सन् 2000 प . 127 8. उपरोक्त प . 127 9.उपरोक्त प . 127